कुल्लू जनपद की देव–संस्कृति में प्रयुक्त होने वाले लोक–वाद्य

सुनीता चंदेल
असिस्टैंट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, कुल्लू

हिमाचल के आंचल में बसे कुलूत देश की पवित्र भूमि कुल्लू वादी केवल पर्यटक स्थान ही नही बल्कि इसका अपना ही एक भौगोलिक महत्व भी है। हिम से ढके ऊँचे पर्वतों की ऊँची चोटियां, देवदार के घने जंगल, सुन्दर, साफ झीलें, प्रफुल्लित झर–झर करते झरने बाहें पसारे और आमन्त्रित करती चारागाहें, कल–कल नाद करती सरिताएं इसके वातावरण में मधुर संगीत को बिखेरती हैं। इस भू–भाग के उत्तर पूर्व के मध्य में हिमालय पर्वत श्रृंखला है जो इसे लाहुल घाटी व चम्बा जनपद से पृथक करती है। यह दक्षिण पूर्व में किन्नौर तथा शिमला तथा दक्षिण पश्चिम में कांगड़ा तथा मण्डी से घिरा हुआ है। कुल्लू के पश्चिम में बड़ा भंगाल श्रृंखला है जो इसे कांगड़ा से पृथक करती है। दक्षिण में धौलाधार पर्वत है जो बाह्य हिमालय का भाग है।

संगीत का आधार नाद है। जिसे मानव ने अपने कण्ठ से या संगीत वाद्यों द्वारा उत्पन्न किया है। वास्तव में वाद्ययंत्र अपने आधार से संगीत की आत्मा को प्रकट करते हैं। लोक–वाद्य इसमें सबसे प्रमुख हैं क्योंकि ये वो वाद्य हैं जिनसे लोकमानस जुड़ा हुआ है और उनकी विधाओं से अच्छी तरह परिचित है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक वाद्यों की प्रमुख भूमिका रही है। कुछ वाद्यों को शास्त्रीय वाद्यों का दर्जा दिया और कुछ वाद्य लोक–संगीत में अपनी पहचान बनाते आए हैं। देखा जाए तो लोक–वाद्य जनमानस के अधिक निकट प्रतीत होते हैं क्योंकि लोकसंगीत उनके खून में होता है। इन लोक वाद्यों पर अनेक प्रकार के लोक और देव–ताल बजाए जाते हैं जो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। शास्त्रीय वाद्यों पर बजने वाले वाद्यों पर भी इसी प्रकार से अनेक तालों का जो वादन किया जाता है। लोकतालों की बात की जाए तो कई जगहों पर हम पाऐंगे कि इन तालों में कहीं न कहीं अपनी रचनात्मकता का प्रयोग किया जा सकता है परन्तु हम देखते हैं कि इस रचनात्मकता को एक तरफ रखकर ये अपनी प्राचीन पहचान बनाए हुए हैं और शास्त्रीय संगीत के तालों की तरह ही ये नियमबद्ध हैं और इन्हें नहीं बदला जा सकता।

लोक–वाद्य कुल्लू जनपद की देव–संस्कृति का मुख्य आधार हैं जनपद के देवताओं के लिए विभिन्न स्थिति के लिए ताल इन्हीं लोकवाद्यों पर ही बजाए जाते हैं। यदि इन लोकवाद्यों की उपस्थिति को देव–संस्कृति से निकाल दिया जाए तो अधिकतर देवी–देवता खामोश हो जाएंगे क्योंकि बिना वादन के जनपद कुल्लू के

देवी–देवता एक भी कदम आगे नहीं बढ़ते। इससे इन लोक वाद्यों की महत्ता का अंदाजा लगाया जा सकता है। देवता के घर से बाहर निकलने, देवता के गमन, देवता का दूसरे देवता के साथ मिलन, देवता का लम्बी यात्रा करना, देवता का किसी व्यक्ति को अपनी शक्ति का मूक प्रदर्शन, गूर में देवता का प्रवेश, देवता नृत्य, देवता का चढ़ाई चढ़ना, देवता का नीचे की ओर आना अर्थात नीचे की ओर उतरना, देवता का सीधे मार्ग पर चलना, देवता का गुस्सैल प्रदर्शन, देवता का शान्ति प्रदर्शन, देवता का नदी पार करना, देवता का निर्माण, देवता के वैठे रहने की स्थिति में इन्हीं लोकवाद्यों पर या ढोल–नगाड़े पर अलग–अलग तालों का वादन किया जाता है। यही कारण है कि जनपद कुल्लू की देव–संस्कृति में ये लोक–वाद्य इतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

लोकवाद्यों का वर्गीकरण

वाद्यों का वर्गीकरण कोई नई चीज नहीं है ऐतिहासिक पुस्तकों तथा ग्रंथों में वाद्यों का वर्गीकरण किया गया मिलता है। ऐसा करना इसलिए भी किया जाता है ताकि अध्ययन के लिए सुविधा हो। प्राचीन काल से अब तक भिन्न–भिन्न विद्वानों द्वारा वाद्यों के अलग–अलग वर्ग विभाजन उनके अपने–अपने तर्कों पर आधारित है। किसी ने निर्माण सामग्री के आधार पर वाद्यों को निर्माणित किया है, तो किसी ने बनावट के आधार पर, किसी ने वादन विधि के आधार पर तो किसी ने प्रयोजन के आधार पर वाद्यों को वर्गीकृत किया है।

हिमाचल प्रदेश की बात की जाए तो यहां लोकवाद्यों का वादन मुख्यतः देवपर्वों में देवपूजा तथा देवयात्रा के साथ, लोकनृत्यों में, लोकनाट्यों में तथा लोकगीतों में गायन के साथ होता है। परन्तु लोकवाद्यों द्वारा क्रिया करने पर जिस प्रयोजन की प्राप्ति होती है उसके अनुसार महर्षि भरतोक्त वर्ग विभाजन की वैज्ञानिकता को बल मिलता है। लोकवाद्यों में पुरानी परम्पराओं के प्रचलन से हिमाचल में प्रचलित लोकवाद्यों को चार भागों तथा उपभागों में निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता हैः–

तत् वाद्य – तारों से निकलने वाली सांगीतिक ध्वनि वाले वाद्य इस वर्गीकरण के अन्तर्गत आते हैं। इन वाद्यों में लोहे, तांबे, पीतल, तथा चमड़े की तारों का प्रयोग होता है। कुल्लू जनपद की देव–संस्कृति में यह बड़ी ही हैरान करने वाली बात है कि यहां किसी भी तत् वाद्य का वादन देव–संस्कृति मे नहीं किया जाता है। इसका कारण साफ है कि जनपद में ढोल–नगाड़े जैसे दमदार वाद्यों का वादन किया जाता है जिनकी आवाज़ मीलों दूर तक सुनाई देती है इसलिए यदि इनके मध्य किसी तत् वाद्य जिसकी आवाज जो बहुत ही संवेदनशील रहती है वह सुनाई नहीं देगी। इसलिए जनपद की देव–संस्कृति में इस प्रकार के वाद्यों का विकास ही नहीं हुआ और न ही इनका प्रयोग किया जाता है।

सुषिर वाद्य – ये वो वाद्य हैं जिनमें वायु दबाव को अल्पाधिक करके विभिन्न स्वरों को अभिव्यक्त किया जाता है उन्हें सुषिर वाद्य कहते हैं। जनपद की देव–संस्कृति में इस वर्ग के वाद्यों का प्रयोग होता है और काफी अधिक मात्रा में किया जाता है। ऐसे अनेक वाद्य जनपद की देव–संस्कृति में बनाए गये हैं जिन्हें हवा के दबाव से बजाया जाता है और देव–संगीत में चार चांद लगाए जाते हैं। जनपद के इन सुषिर वाद्यों की ऐतिहासिकता की बात की जाए तो ये भी ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं क्योंकि इन्हीं से मिलते जुलते वाद्यों का प्रयोग संगीत के इतिहास में मिलता है। जनपद कुल्लू की देव–संस्कृति में इन वाद्यों का वादन देव–संगीत की सांगीतिक रचना और नियमों के साथ किया जाता है।

(1) शहनाई – जनपद कुल्लू में इस वाद्य का बहुतायत प्रयोग होता है। इस वाद्य की बात की जाए तो यह कोई नया वाद्य नहीं है जिसका वर्णन मात्र कुल्लू जनपद की देव–संस्कृति में ही नहीं बल्कि सांगीतिक इतिहास का कोई भी पन्ना पलटने पर इसका वर्णन आसानी से मिल जाएगा। यह एक प्राचीन वाद्य है। मतंग ने मधुकरी वाद्य का जो लक्षण बतलाया है वह आधुनिक शहनाई के सदृश है। पं0 शारंगदेव ने इस वाद्य को सुनांदी नाम से उल्लेखित किया है जिसका अर्थ है सुन्दर नाद देने वाला। जनपद में शहनाई बजाने वाले वर्ग को ''हेसी'' कहा जाता है।

यह वाद्य धतूरे के फूल के आकार की एक हाथ लम्बी लाल चन्दन की बनी होती है। कभी–कभी इसे चांदी धातु से भी बनाया जाता है। इसमें आधे बेर के बीज के आकार वाले एक–एक अंगूठे के अन्तर से छः रन्ध्र होते हैं। इसके मुख पर चाँदी निर्मित टुकड़ा होता है जिसे 'पी–पी' कहते हैं। पी–पी सरकंडा लगा होता है जिसे

'पम्पिका कहते हैं। कुछ क्षेत्रों में ''सरकंडा'' या ''पम्पिका'' ''पाला'' घास की बनी होती है। जनपद में यह ''पत्तर'' घास की बनी होती है जिसे सिरे से जोड़ा जाता है। ध्वनि बाहर निकालने के लिए पम्पिका को पानी या थूक से गीला करना पड़ता है। पम्पिका को शहनाई के ऊपर के भाग में जहां एक छल्ला चांदी या हाथी दांत का लगा रहता है, से जोड़ देते हैं। पम्पिका को मुँह में लगाकर सांस फूँककर स्वर निकाला जाता है। यह मांगलिक सुषिर वाद्य है। जिसका वादन प्रातः–सांय देवपूजा, पुत्र जन्म, विवाह और शवयात्राओं में होता है। जनपद में यह वाद्य और भी महत्त्वपूर्ण तब होता है जब देवता की प्रत्येक स्थिति के लिए इसमें संगीतबद्ध रचनाओं को बजाया जाता है। ये रचनाऐं संख्या में सैंकडों हो सकती हैं, जिनका कि देव–संगीत में प्रयोग किया जाता है। यह वाद्य जनपद की देव–संस्कृति का एक आधार वाद्य है क्योंकि इसके वादन से ही देव–संगीत में एक भरावपन आता है और समृद्ध जनपद की देव–संस्कृति में चार चाँद लगा देता है।

(2) शंख – शंख को लोक–वाद्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता परन्तु जनपद की देव–संस्कृति में इस वाद्य का प्रयोग इतना होता है कि यह वहां का लोक–वाद्य की तरह ही बन गया है। जनपद में असंख्य देवी–देवताओं की नित्य पूजा प्रतिदिन प्रातः–सांय होती है जिसमें इस वाद्य का वादन किया जाता है। इसके अतिरिक्त लगभग सभी घरों में यह वाद्य रहता ही है और प्रतिदिन इस वाद्य का वादन हर घर का वासी करता है। इस वाद्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हम पाऐंगे कि यह एक ऐतिहासिक वाद्य है। नान्य देव ने सुषिर वाद्यों में इसे प्रमुख वाद्य बताया है। प्रचीन काल से इस वाद्य की महत्त्वता इस बात से लगाई जा सकती है कि इसी वाद्य के वादन के पश्चात् ही किसी युद्ध का प्रारम्भ होता था। इस वाद्य को अमंगल का नाशक माना जाता है। भारतीय समाज की इस प्रचीन भावना को कालीदास ने शंख के साथ अभिव्यक्त किया है। शंख कालिदास के समय कितना मांगलिक था इसका एक और प्रमाण हमें मेघदूत में मिलता है। भिन्न–भिन्न अवसरों पर शंख का वादन अलग–अलग ढंग से होता है। पूजा आदि में क्रमशः बाहर और अन्दर को सांस को प्रवाह देना पड़ता है। जबकि शवयात्रा में केवल बाहर को ही वायु फूंकनी पड़ती है। धार्मिक स्थलों में सुषिर वाद्यों के प्रयोग से पवित्रता की वृद्धि होती है। वैज्ञानिकों का मत है कि इस वाद्य की ध्वनि जहां–जहां भी जाती है वहां तक क्षय आदि दूषित रोगों के कीटाणू इस ध्वनि विशेष से ही मर जाते हैं। जनपद

में देखा गया है कि इसकी वादन विधि अलग–अलग रहती है। इसे बजाने में कुशलता की आवश्यकता होती है। साधारण व्यक्ति इससे कर्कश ध्वनि ही निकाल पाएगा।

(3) करनाल – इस वाद्य के इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो इस प्रकार के वाद्य का वर्णन हमें नहीं मिलता। छुट–पुट इससे मिलते जुलते वाद्यों का वर्णन तो मिलता है, परन्तु ठीक इस तरह वाद्य का वर्णन नहीं मिलता। इसलिए इसे पहाड़ी संस्कृति की ऊपज कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। धतूरे के फूल के आकार वाली छः फुट लम्बी ताम्बे या चांदी की बनी हुई आकृति को करनाल कहते हैं। इसकी लम्बाई पांच से छः फुट तक होती है। यह ओंठ से सटाये जाने वाले सिरे से लगातार आगे की और फैलता जाता है और अग्रमुख लगभग एक मीटर परिधि का होता है। करनाल के दो भाग होते हैं जिसमें तीन गांठें होती हैं। दोनों भागों को बजाते समय मध्य से मिलाया जाता है। इसको बजाने के लिए बाहर और अन्दर दोनों ओर फूंक देनी पड़ती है। बाहर को भारी तथा अन्दर को पतली ध्वनि निकलती है। ध्वनि का नाद बड़ा होता है जो दूर–दूर तक सुना जा सकता है। बाहर से 'भौं–भौं' तथा अन्दर को 'कुड़डड़' की मधुर ध्वनि निसृत होती जिसे बजाने में लम्बा सांस अन्दर–बाहर को खींचा जाता है।

जनपद में इस वाद्य का वादन देवता की हर स्थिति के साथ होता है। चाहे देवता के घर से बाहर निकलने, देवता के गमन, देवता का दूसरे देवता के साथ मिलन, देवता का लम्बी यात्रा करना, देवता का किसी व्यक्ति को अपनी शक्ति का मूक प्रदर्शन, गूर में देवता का प्रवेश, देवता नृत्य, देवता का चढ़ाई चढ़ना, देवता का नीचे की ओर आना अर्थात नीचे की ओर उतरना, देवता का सीधे मार्ग पर चलना, देवता का गुस्सैल प्रदर्शन, देवता का शान्ति प्रदर्शन, देवता का नदी पार करना, देवता का निर्माण, देवता के वैठे रहने की यूं कहें कि हर स्थिति में इस वाद्य का वादन अन्तराल में किया जाता है और अत्यन्त मधुर प्रतीत होता है। कई बार सभा बुलाने के लिए इस वाद्य का प्रयोग स्पीकर की तरह भी किया जाता है। जनपद की देव–संस्कृति में यह वाद्य अपनी एक प्रमुख पहचान बनाए हुए है और इस वाद्य का वादन कोई आसान कार्य नहीं है कुशल वादक ही इस वाद्य का वादन कर पाने में सक्षम हैं। अन्यथा कर्कशता से इसकी ध्वनि अमधुर प्रतीत होती है। यह वाद्य देव–संगीत में कब जुड़ा इसका पुष्ट प्रमाण हमें नहीं मिलता। अनुमान यही लगाया

जा सकता है कि देव–संस्कृति के विकास के साथ दिमागी ऊपज से यह जनपद के देव–संगीत के साथ यह वाद्य जुड़ा।

(4) रणसिंघा – इस वाद्य के इतिहास पर एक दृष्टि डाली जाए तो इस प्रकार के वाद्य का वर्णन इतिहास में मिल जाता है, परन्तु ठीक जनपद में जिस प्रकार के वाद्य का प्रयोग देव–संस्कृति में किया जाता है वैसा नहीं मिलता। जनपद में इसे 'नरसिंगा' भी कहा जाता है। यह वाद्य अंग्रेजी अक्षर श्रै के आकार का होता है। यह वाद्य तांबे, पीतल या चांदी की धातुओं से बनाया जाता है। करनाल की तरह ही इसमें भी दो भाग होते हैं। जिसमें तीन गांठें होती हैं। मध्य से यह वाद्य भी अलग हो जाता है और इसके दो भाग बन जाते हैं और वादन के समय इसे जोड़कर एस अक्षर की तरह बनाया जाता है और वादन किया जाता है। यह वाद्य देववाद्य के रूप में भी माना जाता है। इसमें भी फूंक को बाहर और अन्दर खींचने से मधुर ध्वनि को निकाला जाता है। यह एक ऐसा वाद्य है जब अन्य वाद्यों का वादन ना भी हो रहा हो और देवता की पूजा आदि चल रही हो तो इसका एकल वादन किया जाता है। साथ ही अन्य वाद्य जब बज रहे हों तब भी जनपद में इसका वादन इकट्ठा दूसरे वाद्यों के साथ किया जाता है। इसके बजाने के लिए अत्यन्त कुशल वादकों की आवश्यकता होती है क्योंकि इसकी वादन प्रक्रिया कठिन है। जनपद में इस वाद्य का अच्छा–खासा वादन किया जाता है।

(5) काहल – यह वाद्य भी जनपद में प्रयोग किया जाता है। बनावट की बात की जाए तो यह वाद्य भी करनाल वाद्य की तरह ही होता है परन्तु अन्तर इतना है कि यह वाद्य एक लम्बी सुराही की तरह पतला होता है और करनाल की तरह आगे से उतना विस्तार नहीं होता है। यह वाद्य तांबे, पीतल, चांदी आदि धातुओं से बनाया जाता है। इसके भी दो खण्ड होते हैं और तीन–से चार गांठें होती हैं। इसकी लम्बाई तीन से चार फुट के मध्य रहती है। इस वाद्य को अन्य वाद्यों की तरह हर समय नहीं बजाया जाता है बल्कि किसी विशेष अवसर पर ही इस प्रकार के वाद्य का वादन किया जाता है। इसका वादन सरल सा प्रतीत होता है इसलिए इसका वादन छोटे–छोटे बच्चे तक भी करते हैं। इस वाद्य की भी वादन विधि रहती है जिसे ध्यान में अवश्य ही रखा जाता है।

अवनद्ध वाद्य – भारतीय संगीत के इतिहास में अनेक प्रकार के जो वाद्य वर्गीकरण किए गए हैं उनमें अवनद्ध वाद्यों का वर्गीकरण भी आता है। इस वर्ग के

अन्तर्गत ऐसे वाद्यों का नाम आता है जो अन्दर से खोखले होते हैं और बाहर से किसी चमड़े से मढ़े हुए होते हैं। इस प्रकार के वाद्यों को हाथों और डंडे से बजाकर ध्वनि उत्पन्न की जाती है। ऐसे वाद्यों को ही अवनद्ध वाद्य कहा जाता है। इन्हें ताल वाद्य भी कहा जाता है। लय को निश्चित सीमा में बांधना ही इनका प्रयोजन होता है। पौराणिक गाथाओं के अनुसार अवनद्ध वाद्यों की उत्पति अन्य वाद्यों से पूर्व मानी जाती है और प्रवर्तक माने जाते हैं। आनद्ध या अवनद्ध वाद्यों के लिए नाट्यशस्त्र में कहा है कि इन्हें चर्म से बांधना आवश्यक है। उन्होंने चर्म वाद्यों के सैंकड़ों प्रकार बताये हैं।

उत्तर–पश्चिमी हिमालय अर्थात हिमाचल प्रदेश में अवनद्ध वाद्यों को निर्माण पेड़ के तने को काटकर तथा उसे खोखला करके उसके मुख पर पशुचर्म मढ़कर किया जाता है। इनका प्रयोग उत्सव, पूजा, युद्ध इत्यादि में बहुधा देखने को मिलता है। एक गाँव से दूसरे गाँव में संदेश वाहक का काम भी ये वाद्य करते हैं। जनपद कुल्लू की देव–संस्कृति में तो इस प्रकार के वाद्यों की भरमार है और देव–संगीत के प्रमुख या आधारभूत वाद्य इसी वर्ग के अर्न्गत आते जिनके ईर्द–गिर्द जनपद का देव–संगीत घूमता है।

(1) ढोल – ऐसा नहीं है कि यह वाद्य मात्र जनपद की ही देव–संस्कृति में ही प्रयोग किया जाता है और मात्र यहीं का ही एक प्रमुख वाद्य है। वास्तब में यह वाद्य एक ऐतिहासिक वाद्य है और प्राचीन काल से लेकर ही इस वाद्य का प्रयोग होता रहा है और वर्तमान समय तक पहुंच गया है। हो सकता है कि इसकी बनावट में अन्तर रहा होगा परन्तु देखने वाली बात तो यह है कि इस वाद्य का प्रयोग होता आया है। वैदिक काल में ढोल को ''पणव'' कहने का उल्लेख मिलता है। इस वाद्य को भरत ने पुष्कर वाद्यों का प्रमुख अंग माना है। ''पणव'' का बौद्ध एवं परवर्ती ब्राह्ण साहित्य में बहुतायत से उल्लेख हुआ है। ढोल शब्द की व्युत्पति फारसी शब्द से भी मानी जाती है। इसी प्रकार जनपद की देव–संस्कृति में ढोल एक प्रमुख वाद्य है और यह एक आधारभूत वाद्य है। जनपद में इसके वादन करने वाले को ढोली कहा जाता है।

इस वाद्य की बनावट की बात की जाए तो यह लगभग 20 इंच लम्बा और जिसके मुंह का व्यास 10 इंच होता है। इसे मृत बकरी के चमड़े से मढ़ाया जाता है। मुख के किनारे पर चमड़े के घेरे में आठ छिद्र बनाकर उनमें पतली रस्सी से

पूड़ों को मढ़ा जाता है। कभी–कभी रस्सी की जगह चमड़े की रस्सी का उपयोग किया जाता है। ढोल के दाहिने पूडे को लकड़ी से बजाया जाता है। कई जगह इसे ''चौवे'' कहते हैं, से बजाया जाता है। बाईं तरफ को हाथ से ही बजाया जाता है। ढोल के बायें ''पूड़े'' का नाद ऊंचा होता है तथा दायें का नाद नीचा व गम्भीर होता है।

जनपद के देव–संगीत में इस वाद्य को एकल रूप में नहीं बजाया जाता है। इसके साथी नगाड़े के साथ इसका सामजस्य बहुत अधिक बैठता है और इसे साथ में ही बजाया जाता है। असंख्य तालों का वादन इसी वाद्य के द्वारा जनपद में किया जाता है। जनपद की देव–संस्कृति के मुख्य आधार के तौर पर इस वाद्य का महत्त्व बहुत अधिक है। जनपद में चांदी धातू तक के ढोल बजाए जाते हैं जो देव–संस्कृति के समृद्ध होने का प्रमाण देते हैं।

(2) ढोलक – यह वाद्य सुनने या देखने में कोई नया वाद्य नहीं है। यह वाद्य भी ऐतिहासिकता अपने आप में समेटे हुए है। यह वाद्य ढोल वाद्य की ही तरह ही माना जा सकता है अन्तर मात्र इतना है कि इसकी लम्बाई थोड़ी अधिक होती है और व्यास थोड़ा कम होता है। इसे भी जनपद में बकरी के चमड़े से मढ़ा जाता है। जनपद के ढोलक की मुख्य विशेषता है कि जहां दूसरी जगह इसे हाथों से बजाया जाता हैं वहीं जनपद में इस वाद्य को ढोल की ही भांति लकड़ी की काठी से बजाया जाता है और इस वाद्य पर ढोल की ही तरह तालों का वादन किया जाता है। इस वाद्य में स्वर को उतारने व चड़ाने के लिए चमड़े की ही महीन सी रस्सियों से ही इसे कसा जाता है और ढीला किया जाता है। ढोलक का खोल सदैव ही लकड़ी की ही खोल से बजाया जाता है। जनपद में देवी–देवता के कीर्तन में इस वाद्य की बहुत बड़ी भूमिका रहती है और इसी वाद्य की थाप पर देवी–देवताओं के जागरण किये जाते हैं और देव–संगीत का आन्नद लिया जाता है।

(3) दराघ – जनपद की देव–संस्कृति में इस वाद्य का भी काफ़ी प्रयोग होता है। इसकी बनावट की बात की जाए तो यह ढोल से कुछ आकार में बड़ा होता है। दोनों ओर बकरे के चर्म से इसे ढोल की ही भान्ति मढ़ा जाता है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसे एक ओर से ही बजाया जाता है। इसे लकड़ी के डण्डे से बजाया जाता है। जनपद की देव–संस्कृति का यह यद्यपि एक महत्त्वपूर्ण वाद्य है परन्तु इस वाद्य के कलाकार बहुत कम हैं और यह वाद्य भी कम ही जनपद में पाया

जाता है। किसी देवी या देवता के मुख्य उत्सव या विशेष तिथि पर इस वाद्य के वादन द्वारा ही किसी उत्सव का प्रारम्भ होता है। इस पर भी ढोल जैसे तालों का ही वादन किया जाता है। संगति के लिए नगाड़ा वाद्य का वादन साथ में अवश्य किया जाता है।

(4) ढाढ – जनपद के वाद्यों की श्रृंखला में इस वाद्य का नाम भी प्रमुखता से लिया जाता है। इसकी बनावट विशेष होने के साथ–साथ इसके वादन के भी विशेष नियम हैं। यह एक देव–वाद्य है। यह 'भेखल' नामक लकड़ी से बनाया जाता है। यह लगभग दो फुट लम्बा होता है। देखने में ढोल जैसा ही लगता है। इसे विशेष व्यक्ति द्वारा ही बजाया जाता है। हर कोई इस वाद्य का वादन नहीं करता। देवता द्वारा चुना गया व्यक्ति ही इस वाद्य का वादन करता है। इस वाद्य को भी बकरे के चमड़े से मढ़ा जाता है। यह वाद्य जनपद के कारीगरों की कुशलता का प्रमाण है क्योंकि लकड़ी का खोल अपने देशी नुस्खे से बनाना यह रोचक बात लगती है। इस वाद्य का संगीत भी नगाड़ा वाद्य ही है। ढोल जैसे तालों का इस वाद्य पर तालों का वादन किया जाता है। यह अवश्य है कि ढोल जैसे इस वाद्य का वादन हर उत्सव में नहीं होता है। किसी विशेष उत्सव पर ही इस वाद्य का वादन किया जाता है। जैसे जनपद के सिराज क्षेत्र में इस वाद्य का वादन फागुली उत्सव के दौरान विशेष रूप से किया जाता है।

(5) फड़ी – अबनद्ध वाद्यों की श्रणी में यह भी जनपद कुल्लू का एक और महत्त्वपूर्ण वाद्य है। यह वाद्य लम्बाई मे काफी अधिक होता है। मृदंग वाद्य से डेढ गुना अधिक लम्बा यह वाद्य अपनी ऐतिहासिकता लिए जनपद में वर्तमान समय तक आ पहुंचा है। इस वाद्य की बनावट की बात की जाए तो यह वाद्य भी ढाढ वाद्य की ही तरह भेखल नामक झाड़ी नुमा पेड़ के लम्बे तने का खोल होता है जिस पर बकरी की खाल का पूड़ा चढ़कार दोनों सिरों को सुतड़ी से बांधा जाता है। यह भी देव–वाद्य है। देवता के विशेष पर्वों जैसे–देवता की जन्मतिथि ''जाग'' पर तथा चेले द्वारा ''खण्डा'' नृत्य के साथ नाचते हुए इसका वादन अपेक्षित होता है। इसे ''जेठा'' बाज भी कहा जाता है। गृह–पूजा के समय देवरथ के आगमन पर सबसे पहले इस वाद्य की पूजा होती है। पशुधन की समृद्धि का प्रतीक यह वाद्य पतली छड़ी से धीरे–धीरे बजाया जाता है। लोक–विश्वास के अनुसार इसका नाद पाताल लोक में भी सुना जा सकता है। जनपद कुल्लू में इस वाद्य की लम्बाई काफी अधिक होती है

और पतला होता है। इस वाद्य का अस्तित्व वर्तमान समय में जनपद में खतरे में है। इस वाद्य के कलाकार भी नाममात्र के जनपद में रह गए हैं। साथ ही इक्का–दुक्का वाद्य ही जनपद में इस प्रकार के रह गए हैं जो कि इस वाद्य की अवनति का प्रमाण दे रहे हैं।

(6) पौहल– कुल्लू जनपद में लोकवाद्यों की कमी नहीं रही है, कुछ न कुछ यहां के कारीगरों ने सदैव से ही अलग किया और अनेक लोकवाद्यों को जन्म दिया। उसमें यह वाद्य एक है। जनपद में इस वाद्य को 'दवस' भी कहा जाता है। जनश्रुति के अनुसार ढौंस लोकवाद्य में देवता की आत्मा वास करती है। इसके वादन से ही देव प्रक्रिया में गूर को संकेत मिलता है। इसकी बनावट की बात की जाए तो यह वाद्य भी भेखल की लकड़ी से निर्मित होता है। इसकी लम्बाई डेढ फुट होती है। परिधि 39 अंगुल और मुख का व्यास 12 अंगुल के लगभग होता है। चमड़े से मढ़ते समय इसमें देवता की उपस्थिति में पूजा करके देवात्मा का प्रवेश करवाया जाता है। किनारे में रैऊंश की लकड़ी में चर्म लपेटकर सात रंध्र करके छिद्रों के ऊपर पवित्र लाल डोरी से लाल रंग के कपड़े को बांधा जाता है। इस वाद्य के वादन हेतु जो काठी प्रयोग में लाई जाती है, उसे ''डग्गा'' कहते हैं। आम बोलचाल में यह एक छोटे ढोल जैसा लगता है। परन्तु इसकी ध्वनि ढोल से काफी अलग होती है। इसकी वादन विधि यद्यपि ढोल वाद्य से ही मिलती जुलती है परन्तु फिर भी कई तालों का वादन मात्र इसी वाद्य में ही होता है जो देवता विशेष के लिए ही विशेष रूप से बजाए जाते हैं।

इस प्रकार के वाद्य जनपद में ढोल–नगाड़े की तरह आम नहीं पाए जाते यही कारण है कि ये वाद्य इतने महत्त्वपूर्ण समझे और माने जाते हैं। परन्तु हर देवी या देवता के पास अवश्य ही यह वाद्य पाया जाता है चाहे वह संख्या में एक ही क्यों ना हो। इस प्रकार जनपद के देव–संगीत को यह वाद्य समृद्ध बनाता है। देव–ताल एक जैसे ही हर वाद्य पर बजते हैं इसलिए इन वाद्यों की विविधता पर देव–कारीगरों ने विशेष ध्यान दिया है।

(7) गुज्जू – जनपद की देव–संस्कृति में यह एक अन्य वाद्य है जो अपनी ऐतिहासिकता के लिए प्रख्यात है। इस वाद्य की बनावट शिवजी के डमरू के समान ही होती है। इसे बकरे के ही चमड़े से मढ़ा जाता है। जनपद की देव–संस्कृति में शायद यह वाद्य डमरू की ही नकल है। इससे इस बात का तो अनुमान लगा ही

सकते हैं कि यह वाद्य कितना प्राचीन हो सकता है। जनपद के देव–संगीत में इस वाद्य का प्रयोग कब से किया जा रहा है इसका काल स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं कर सकते परन्तु डमरू वाद्य अतिप्राचीन काल से ही माना जाता है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जनपद में जब से भी देव–संस्कृति का प्रारम्भ हुआ होगा तब से ही इस वाद्य का प्रयोग होता आया होगा। एक बात और इस वाद्य के बारे में महत्त्वपूर्ण है कि शिवजी के डमरू की कोई स्पष्ट वादन विधि आज तक ज्ञात नहीं हो पाई है परन्तु जनपद की देव–संस्कृति में इस वाद्य की वादन विधि प्राचीन और ज्ञात है। पीढ़ी दर पीढ़ी इस वाद्य का वादन होता चला आ रहा है और इस वाद्यों के लिए बनाए गये नियमों और तालों का वादन आज भी जनपद में खूब किया जाता है। छोटी डण्डी और अगुलियों के समावेश से इस वाद्य का वादन अधिकतर एकाकी ही किया जाता है। मधुर ध्वनियों का संचार इस वाद्य द्वारा किया जाता है। यह सब वादक की कुशलता पर निर्भर करता है।

जनपद में यह वाद्य लुप्त होने की कगार पर है। इसका कारण यह है कि इस वाद्य का वादन आसान नहीं है। दूसरी ओर ढोल की तरह इसकी आवाज़ दमदार नहीं होती जिस कारण इस वाद्य का सार्वजनिक प्रयोग किया जा सके। चाहे स्थिति जो भी हो जनपद की देव–संस्कृति में इस वाद्य का स्थान ऊंचा ही रहेगा। देवी–देवताओं के समक्ष इस वाद्य का एकाकी वादन किया जाता है जिससे माहौल मधुर और तालमयी दोनों बन जाता है। यह इस वाद्य वादन की खास विशेषता है। ऐसा मात्र ही नहीं है कि इस वाद्य का मात्र एकाकी ही वादन किया जाता है दूसरे वाद्यों के साथ भी इस वाद्य का वादन किया जाता है परन्तु छोटा वाद्य होने के कारण इस वाद्य की आवाज कहीं न कहीं छुप सी जाती है इसलिए वादन एकाकी वादन की विधियों को अपनाकर एकाकी वादन ही अधिक पसन्द करते हैं।

(8) नगारा – इस वाद्य के इतिहास की बात ही जाए तो यह वाद्य ऐतिहासिक वाद्य प्रतीत होता है। वैदिक काल से दुंदभि तथा भूदुंदुभी जैसे चर्म वाद्यों का अधिक प्रचलन था। भूमि दुंदुभि एक बड़ा नगारा होता था जिसे भूमि खोद कर नाँद जेसी वस्तु बनाकर उसे गड्ढे में स्थिर करते थे। फिर वृषभ के रोमयुक्त चमड़े से मढ़ देते थे। इसका वादन शंकुओं से किया जाता था जिसे 'आहनन' कहते थे। यह रण क्षेत्र एवं धार्मिक कृत्यों का प्रमुख वाद्य था।

जनपद में इसी से मिलते जुलते वाद्य का नाम नगारा है। प्राचीन काल के वाद्य से यह काफी भिन्न है और होगा भी क्योंकि समय के साथ जब विकास होता गया तो इसका विकसित एवं सुन्दर रूप वर्तमान में हमें देखने को मिलता है। जनपद में इस वाद्य को विभिन्न नामों से जाना जाता है। इस 'नौरगो', 'नगारटू' आदि नामों से भी जाना जाता है। इसकी बनावट की बात की जाए तो यह कांसे या तांबे का एक त्रिशंकु के आकार का खोल होता है। जिसे मुख पर भैंस या गाय–बैल की खाल से मढ़ा जाता है। पूड़ा मढ़ने के लिए चमड़े की ही रस्सी बनाई जाती है। रस्सी से जाला बुनकर पूड़े को मढ़ा जाता है। इसके मुख का व्यास लगभग एक फुट होता है।

जनपद की देव–संस्कृति का यह आधार वाद्य है। ढोल वाद्य के साथ ही इस वाद्य की जुगलबंदी की जाती है और यही दो वाद्य मुख्यतः सम्पूर्ण देव तालों तथा देव–संगीत को सम्भालते हैं। देवता का कोई भी उत्सव हो या किसी धार्मिक गतिविधि का आयोजन हो रहा हो तो यह वाद्य अवश्य ही बजता सुनाई देगा। मात्र बजता ही सुनाई नहीं देता बल्कि प्रमुखता के आधार पर इस वाद्य का नाम पहले स्थान पर आता है। क्योंकि ढोल–नगारा यही वाद्य देव–संगीत की आत्मा हैं। देवता की सभी स्थितियों के लिए इस वाद्य में अनेक तालों का वादन किया जाता है, जिसमें ढोल पूर्ण सहयोग करता है। देव–गाथायों के गायन के साथ भी इस वाद्य का खासा प्रयोग किया जाता है।

(9) वाम – इस वाद्य के इतिहास पर दृष्टि डालने पर हमें ज्ञात होता है कि यह दुंदभी वाद्य का ही विकसित रूप है। महाभारत काल में हम इस प्रकार के वाद्य का वर्णन देखते हैं जिसके वादन से युद्ध का प्रारम्भ होता था। नगारा वाद्य का बड़ा रूप ही वाम वाद्य है। जनपद के कई क्षेत्रों में इस वाद्य को नगारा ही बोलते हैं जबकि छोटे नगारे को नरगा कहते हैं। नगारा वाद्य की ही भान्ति इसमें कटोरीनुमा धातू पर चमड़ा मढ़ा जाता है और उसे महीन चमड़ों की ही रस्सियों से कसा जाता है ताकि इसे वादन योग्य बनाया जा सके। इस वाद्य में मोटा सा चमड़ा मढ़ा जाता है इसका कारण यह है कि इस वाद्य की आवाज़ दमदार तथा ज़ोरदार होती है। इसलिए इस प्रकार की ध्वनि उत्पन्न हो सके इसलिए इस प्रकार के मोटे चमड़े का प्रयोग किया जाता है। इस वाद्य को बजाने के लिए दो मोटे–मोटे डण्डों का प्रयोग किया जाता है। इसके वादक को 'वामची', 'नगारची' आदि नामों से पुकारा जाता

है। इस वाद्य की ध्वनि ज़ोरदान उत्पन्न हो सके इसलिए नगारची इन दो डण्डों से पूरी शक्ति लगाकर बजाता है। इस वाद्य का वादन नगारा या ढोल वाद्य की तरह लगातार नहीं होता बल्कि इस प्रारम्भ, मध्य में कहीं–कहीं और अन्त में होता है। जनपद में यह वाद्य किसी विशेष अवसर या दिन का सूचक है। जब भी इस वाद्य का वादन होता है तो लोग समझ जाते हैं कि देवता का कोई विशेष दिन है या कोई उत्सव है या देवता किसी यात्रा में जा रहा है। देव–गाथायों में तो इस वाद्य का महत्त्व इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इस वाद्य का वादन मध्य में देवता की विशेष रचनाओं को संगीतबद्धता प्रदान करता है। इस वाद्य का आकार बड़ा होने के कारण इस प्रकार के वाद्य हर देवता के पास इक्का–दुक्का ही पाए जाते हैं। यही कारण है कि यह वाद्य इतना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। क्योंकि देवता का संगीत इसी वाद्य से प्रारम्भ होता है और इसी वाद्य पर ही आकर समाप्त हो जाता है।

(10) डफाल – जनपद के देव–वाद्यों की श्रृंखला में यह वाद्य भी ऐतिहासिक है। इस वाद्य को डफाल की तरह माना जा सकता है, परन्तु जनपद के डफाल वाद्य में काफी अन्तर देखने को मिलता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इसकी बनावट और वादन शैली काफी भिन्न है। इसके खोल को एक ओर से ही चमड़े मढ़ा जाता है जबकि दूसरी ओर से इसे खाली ही रखा जाता है। इसे चमड़े की ही महीन रस्सियों से कसा जाता है ताकि इसे वादन योग्य बनाया जा सके। इस वाद्य का वादन दूसरे वाद्यों के साथ ही देवी–देवताओं के विशेष अवसर पर किया जाता है। यह डफ–डफ की आवाज़ निकालता है जो कि अन्य वाद्यों के मध्य–मध्य में की जाती है।

घन वाद्य – कांस्य आदि धातुओं से बजाया जाने वाला वाद्य घन वाद्य होता है। इन वाद्यों में ध्वनि की उत्पत्ति कारण ठोस वस्तुओं का परस्पर टकराना है। धातुओं को आग में भली भान्ति पकाकार पहले चक्राकार कर लेते हैं। फिर निश्चित वाद्यों की आकृति तैयार की जाती है। वेदों के अनुसार इन वाद्यों में ध्वनि कम उत्पन्न होती हो तो वह शक्ति है, अधिक होती है तो वह शिव होती है।

धातु की खोज से पूर्व हड्डियों, पत्थरों आदि पर प्रहार करने से ध्वनि उत्पन्न करने की परम्परा भी रही है इसके हमें कई प्रमाण मिले हैं। जनपद में इस प्रकार के वाद्यों का प्रयोग देव–परम्परा की देव–सांगीतिक विधाओं में खूब होता है। ये

लोकवाद्य देव–पूजन तथा भजन–कीर्तन करने के समय प्रयोग किए जाते हैं। ये वाद्य मुख्य वाद्यों के साथ सहयोग करते दिखाई देते हैं जिससे एक संगीतमय वातावरण तैयार होता है और मुख्य वाद्यों की लड़ी जहां टूटती है, वहीं इस प्रकार के वाद्य उस खालीपन को भरने का कार्य जनपद की देव–संस्कृति के संगीत में करते हैं। इसलिए इन वाद्यों की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। प्राचीन समय से लेकर इस प्रकार के वाद्यों का प्रयोग होता आया है और वर्तमान समय में भी इनका प्रयोग खूब किया जाता है।

(1) घण्टी – घण्टी वाद्य मात्र जनपद का ही नहीं बल्कि यह वाद्य समान रूप से पूरे भारतवर्ष में प्रयोग किया जाता है और इसका वादन किया जाता है। हम प्रायः मन्दिरों में बड़ी–बड़ी घण्टियों को देखते हैं जिनका वादन लगभग सभी आते–जाते करते रहते हैं। मंदिरों में इन घण्टियों का प्रयोग कब से हो रहा है यह कहना सम्भव नहीं क्योंकि प्राचीन काल से ही हम इस प्रकार के वाद्यों का नाम पढ़ते एवं सुनते आए हैं। इस घन वाद्य का स्वरूप जनपद की देव–संस्कृति में थोड़ा भिन्न है और इसके प्रयोग का भी ढंग अलग है। यह ज़रूर है कि जनपद के मंदिरों की बड़ी घण्टियों का स्वरूप अलग नहीं है परन्तु छोटी घण्टियों का प्रयोग अपने ही तरीके से किया जाता है। छोटी घण्टी जिसमें दो या ढाई इंच के व्यास वाली छोटी घण्टी होती है जिसमें ऊपर से पकड़ने के लिए डण्डी होती है जहां से पकड़कर इनका वादन किया जाता है। यह घण्टियां कांसे या पीतल की बनी हुई होती है। इस वाद्य का प्रयोग देवता की पूजा के लिए प्रतिदिन या दिन में दो बार अवश्य ही किया जाता है। देखा गया है कि पूजन विधि में यह वाद्य सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसी की ही टन–टन की आवाज़ पर ही लयबद्ध तरीके से मंत्रों का उच्चारण किया जाता है। इसकी आवाज़ सुनने को कर्णप्रिया लगती है चाहे यह एक ही आवाज़ क्यों न करती हो। जनपद में भिन्न–भिन्न आकार की घण्टियां प्रत्येक देवता के पास या यूं कहें कि हर घर में अवश्य ही प्राप्त होगी जो इस वाद्य की लोकप्रियता एवं अनिवार्यता को दर्शाता है। कोई भी आदमी चाहे वह संगीत से संबधित हो या ना हो इस वाद्य का वादन आसानी एवं सहजता से करता है और आन्नदमय होकर देवता की पूजन विधि को सम्पन्न करता है।

(2) भाणा – कांसे की थाली पर लकड़ी से चोट करने पर ध्वनि उत्पन्न होती है। इस प्रकार के वाद्यों के इतिहास पर दृष्टि डालें तो पयेंगे तो शायद इसी प्रकार

जब धातु की खोज हुई थी तो मनुष्य ने इसके ऊपर चोट करके की किसी प्रकार की ध्वनि अवश्य सुनी होगी जिससे इस वाद्य की खोज हुई हो। जनपद में इस वाद्य की बात की जाए तो इसका प्रयोग देव–संस्कृति में अवश्य ही होता है। थाली जैसे ही इस वाद्य में कोने में एक छेद किया जाता है और उसमें डोरी बांधकर एक हाथ से पकड़ा जाता है और दूसरे हाथ से इसे लकड़ी से बजाकर सांगीतिक ध्वनि उत्पन्न की जाती है। इसके बजाने के लिए थाली का स्वतन्त्र रहना आवश्यक होता है यही कारण है कि डोरी से जब इसे बांधा जाता है तो यह हवा में स्वछन्द रहती है और उसी समय इस पर लकड़ी से चोट की जाती है। जनपद में इसे ''बान कंसाल'' भी कहा जाता है। जनपद की देव–संकृति में इस वाद्य को प्रमुख वाद्यों में नहीं गिना जाता बल्कि इसे सह–वाद्य के रूप में जाना व माना जाता है। इसका कार्य ढोल–नागरों जैसे वाद्यों के मध्य के अन्तराल को पूरा करने के लिए होता है। मध्य–मध्य में इसकी आवास सांगीतिक ध्वनि उत्पन्न करती है और देव–संगीत को एक संगीतमय बनाने में योगदान देती है। जनपद में कई जगह से ''थाल'' वाद्य के नाम से भी जाना जाता है और इसके वादन को थाल बजाना भी कहते हैं।

(3) कणसी – यह कांसा या पीतल की बनी होती है। इसका मुख दो इंच का होता है, इसका मध्य भाग अंगुल भर नीचा रहता है। उस निम्न भाग के ठीक बीच में एक रंध्र होता है जिसमें डोरा पिरोया जाता है। जो उन्नत भाग निम्न को घेरे रहता है वह डेढ़ इंच का होता है। कणसी को दोनों हाथों की तर्जनी व अंगूठे से डोरी को पकड़कर बजाते हैं। बायें हाथ के ताल से उत्पन्न ध्वनि घनता से युक्त होती है। जनपद की देव–संस्कृति में इस वाद्य का अधिकतम प्रयोग देवता को समर्पित जागरण में होता है, साथ ही देवता की पूजा के दौरान भी इस वाद्य का वादन किया जाता है। ऐसा इसलिए भी किया जाता है क्योंकि पूजा के समय अधिकतर ढ़ोल–नगारे जैसे वाद्यों का प्रयोग सदैव नहीं किया जाता, इसलिए इन छोटे घन वाद्यों का सहारा लेकर पूजा के समय भी वातावरण को संगीतमय रखने में सहायता मिलती है।

(4) छंछाला – छंछाला लोकवाद्य जनपद कुल्लू की घनवाद्य श्रृंखला का महत्त्वपूर्ण वाद्य है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह देव–पूजन के समय बजाया जाता है। इसकी बनावट की बात की जाए तो यह वाद्य अष्ठधातु से निर्मित होता है। इसके मुख का व्यास छः इंच होता है। यह मध्य में स्तनवत दो इंच गहरा होता है।

कणसी की तरह ही मध्य में एक डोरी निकली होती है। जिसमें कपड़ा बांध कर हाथ की मुठ्ठी से पकड़ने योग्य बना लिया जाता है। इसमें दोनों को हाथों से टकराकर ''छन्नाक'' की ध्वनि निकलती है। यह वाद्य जनपद कुल्लू की देव–संस्कृति में अत्यन्त पवित्र वाद्य माना जाता है। ऐसा नहीं है कि मात्र देवता की पूजा के समय ही जनपद में इसका प्रयोग किया जाता है, बल्कि अन्य वाद्यों के मध्य–मध्य में इस वाद्य का वादन होता रहता है और यह एक मध्य में एक वीर रस को उत्पन्न करता है और देव–संगीत को चार चांद लगा देता है।

इसके अतिरिक्त जनपद के घन वाद्यों में चिमटा जैसे वाद्य भी आते हैं जिनका प्रयोग अधिकतर देवता को समर्पित जागरणों में होता है और काफी अधिक स्तर पर इसका प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जनपद कुल्लू की देव–संस्कृति में अनेक प्रकार के लोकवाद्यों का प्रयोग होता है जो वर्तमान से ही नहीं बल्कि तब से है जब से जनपद में देव–संस्कृति प्रारम्भ हुई होगी। इसकी प्राचीनता का पत्ता जब चलता है कि यहां माता हिड़िम्बा को कुल्लू के राजाओं की कुल देवी का दर्ज़ा प्राप्त है और माता हिड़िम्बा के बेटे घटोतकच्छ को भी यहां बराबर का सम्मान प्राप्त है। इससे इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि यहां प्राचीन काल से ही देव–संस्कृति का उदय हुआ है और इनका निर्वहन काफी प्राचीन है। लोकवाद्य कुल्लू जनपद की देव–संस्कृति की आत्मा हैं और यह दर्ज़ा इसलिए भी इन लोकवाद्यों को है क्योंकि इनके बिना जनपद के देवता खामोश हैं वे एक भी कदम आगे नहीं चल पाएंगे और उनका उठना–वैठना लोक–वाद्यों के साथ चलता है। देवता यदि खामोश हो जायेंगे तो जनपद का समाज अपने आप ही खामोश हो जाएगा, क्योंकि देवता की हर स्थिति में उपस्थित परमावश्यक मानी जाती है और यह जनपद के देव–समाज का नियम भी। यही कारण है कि ये लोकवाद्य कितनी बड़ी भूमिका जनपद की देव–संस्कृति में निभाते हैं।

जनपद के लोकवाद्य ही नहीं बल्कि किसी भी समाज के लोकवाद्य वहां की सामाजिक झलक प्रदान करते हैं और यह भी दर्शाते हैं कि समाज सांस्कृतिक रूप से कितना सुदृढ़ है। जनपद कुल्लू के लोक–वाद्य भी यही बात प्रदर्शित करते हैं कि लोक–समाज और वहां की संस्कृति कितनी सुदृढ़ है। यही कारण है कि जनपद की देव–संस्कृति भारतवर्ष ही नहीं बल्कि विश्वभर में जानी और पहचानी जाती है।